'काठ की घंटियाँ': संवेदना और शिल्प

बजो!
ओ काठ की घंटियो,
बजो!
मेरा रोम-रोम देहरी है
सूने मंदिर की,
सजो
ओ काठ की घंटियो,
सजो!

शायद कल
टूटी बैसाखी पर चल कर
फिर मेरा खोया प्यार
वापस लौट आये,
शायद कल
प्रकाश-स्तंभों से टकरा कर
फिर मेरी अंधी आस्था
कोई गीत गाये,
शायद कल
किसी के कन्धों पर चढ़ कर
फिर मेरा बौना अहं
विवश हाथ फैलाये |

जितनी भी ध्वनि शेष है
इन सूखी रगों में
तजो
ओ काठ की घंटियो,
तजो!
शायद कल
मेरी आत्मा का निष्प्राण देवता

डॉ. कुमार धनंजय

अपने चक्षु खोल दे,
शायद कल
हर गली अपना घुटता धुआँ
मेरी ओर रोल दे;
शायद कल
मेरे गूँगे स्वरों के सहारे
कोटि-कोटि कंठों की खोई शक्ति बोल दे |
दर्द जितना भी
ऐंठ रहा हो, समेत कर
मंजो,
ओ काठ की घंटियो,
मंजो!

बजो!
ओ काठ की घंटियो,
बजो!
मेरा रोम-रोम देहरी है
सूने मंदिर की,
सजो
ओ काठ की घंटियो,
सजो!

बजो!
ओ काठ की घंटियो,
बजो!

'काठ की घंटियाँ' सर्वेश्वर दयाल सक्सेना द्वारा रचित उनके प्रारंभिक रचना-काल की एक कविता है जो 'तीसरा सप्तक' में संकलित है | इसी शीर्षक से १९५९ ईस्वी में कवि का एक गद्य-पद्य संकलन प्रकाशित हुआ, जिसमें भी यह कविता हमें देखने को मिलती है |

डॉ. कुमार धनंजय

इस कविता में कवि अपने वर्तमान अवस्था की सूचना देता है एवं 'काठ की घंटियों' से संवाद स्थापित करने की कोशिश करता है | कवि की वर्तमान स्थिति यह है कि वह प्रेमहीन, आस्थाहीन, एवं अहंमर्दित है | ये तीनों विशेषताएँ वस्तुतः उस मनुष्य की विशेषताएँ हैं जिसे नयी कविता एक धारा सम्बोधित करना चाहती थी | इन स्थितियों में कवि की आत्मा भी निष्प्राण हो चुकी है | परन्तु कवि, पूर्णतः निराश नहीं है क्योंकि उसे उम्मीद है कि स्थिति बदल सकती है और इसीलिए वह 'काठ की घंटियों' से मुख़ातिब है |

कविता में 'काठ की घंटियाँ' पद का प्रयोग प्रतीकात्मक है क्योंकि यह निराशा में घिरे मनुष्य के शक्ति-श्रोत का अर्थ व्यंजित करता है | यह प्रतीक अपने-आप में विडंबनात्मक भी है क्योंकि काठ में ध्वनि पैदा करने की शक्ति काम होती है | परन्तु 'काठ' शब्द का प्रयोग फिर भी उपयुक्त है क्योंकि स्थितियों की विभीषिका ने इस शक्ति-श्रोत को भी जड़ बनाने की कोशिश की है | यह शक्ति-श्रोत मनुष्य के अंदर ही कहीं विद्यमान है और कवि उसी शक्ति को पुनः संचित करने की कोशिश कर रहा है |

कविता में 'काठ की घंटियाँ' पद का प्रयोग प्रतीकात्मक है क्योंकि यह निराशा में घिरे मनुष्य के शक्ति-श्रोत का अर्थ व्यंजित करता है | यह प्रतीक अपने-आप में विडंबनात्मक भी है क्योंकि काठ में ध्वनि पैदा करने की शक्ति काम होती है | परन्तु 'काठ' शब्द का प्रयोग फिर भी उपयुक्त है क्योंकि स्थितियों की विभीषिका ने इस शक्ति-श्रोत को भी जड़ बनाने की कोशिश की है | यह शक्ति-श्रोत मनुष्य के अंदर ही कहीं विद्यमान है और कवि उसी शक्ति को पुनः संचित करने की कोशिश कर रहा है |

कविता अपने बाहरी कलेवर में भले ही व्यक्तिगत चेतना की कविता दिखाई पड़ती है परन्तु इसके अंदर सामूहिकता की झलक भी है | कविता की पंक्तियाँ हैं-

"शायद कल

मेरे गूँगे स्वरों के सहारे

कोटि-कोटि कंठों की खोई शक्ति बोल दे |"

सारांशतः यह कविता 'नयी कविता' के उस मनुष्य का पक्ष रखती है जो प्रेमहीन है, आस्थाहीन है; जिसका अहम् किसी के हाथों घायल हुआ है एवं जिसकी आत्मा भी निष्प्राण हो चुकी है | इस स्थिति में यह मनुष्य अपने शक्ति-पुंज की तलाश कर रहा है जो उसके अंदर ही कहीं अवस्थित है |

यह कविता संवादात्मक, या यूँ कहें कि एकालाप के शिल्प में लिखी गयी कविता है क्योंकि यहाँ दो पक्ष तो हैं लेकिन केवल एक ही पक्ष अपने मनोभावों को अभिव्यक्त कर रहा है | यह संवाद या एकालाप अंततः प्रार्थना का रूप ग्रहण कर लेता है | कविता चार अनुच्छेदों में विभाजित है | बीच के दो अनुच्छेदों में कवि की स्थिति एवं उसकी कामना की अभिव्यक्ति है तथा प्रारंभिक एवं अंतिम अनुच्छेद प्रार्थना के शिल्प में कविता की संवेदना को गहरा करता है |

डॉ. कुमार धनंजय
सहायक प्राध्यापक (हिंदी विभाग)
पटना विमेंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना |

डॉ. कुमार धनंजय